



International Journal of Applied Research

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2015; 1(10): 887-890
www.allresearchjournal.com
Received: 24-07-2015
Accepted: 26-08-2015

अजय कुमार सिंह

एम.ए. (हिन्दी), एम.ए. (जर्नलिज्म),
एम.एड., एम-फिल, नेट
खसरा नं0 818, बुराड़ी,
दिल्ली-110084
मो0 9868364351

रैदास का लोकतत्व और समाज

अजय कुमार सिंह

सारांश

मध्यकालीन संत साहित्य में लोकतत्व का सामाजिक आधार है। यह सामाजिक आधार संतो ने संघर्ष से अर्जित किया है। संत रैदास इन्हीं निर्गुण संत परंपरा में हुए जो एक गरीब चमार परिवार में पैदा हुए और अपने कर्म से समाज के सभी वर्गों में सम्मान पाने के हकदार हुए और कबीर के समकक्ष दर्जा उन्हें प्राप्त हुआ। जाति-पाति, सामाजिक भेद-भाव, समानता-असमानता से ऊपर ऊठकर संत रैदास ने समाज को जागृत करने में स्तुत्य योगदान दिया। रैदास के लोकतत्व में एक प्रगतिशील तथ्य मौजूद है जो किसी भी स्थिति में यथास्थितिवादी या नियतिवादी तत्वों को तोड़ते हुए रचनात्मक समाज गठन में सहयोग देता है। रैदास अपनी गेय पदों में प्रचलित सभी लोककथाओं; दन्त कथाओं; लोकव्यवहारों को लोक चेतना के रूप में व्यक्त करते हुए उन जीवित लोक तत्वों की पहचान भी करते हैं जिससे समाज का बहुत बड़ा हिस्सा जुड़ा हुआ है, जबकि कुछ चन्द पढ़े-लिखे अगुआ वर्ग उसे पिछड़ा हुआ करार देकर तीसरे दर्जे में डाल देते हैं। रैदास उन जड़ लोक तत्वों की अपेक्षा जीवित लोकतत्वों की पहचान करने की वकालत करते हैं।

विशिष्ट शब्द: लोकतत्व, समकक्ष, स्तुत्य, प्रगतिशील, यथास्थितिवादी, नियतिवादी, अभिजात्य, अखितयार, परिष्कृत, विहंगावलोकन, सुकुमारता, लोकपीड़ा, अतिक्रमण, संस्थागत, वांछनीय।

भूमिका

लोकतत्व से अभिप्राय लोकवार्ता के विभिन्न तत्वों यथा, साहित्य, लौकिक रीति-रिवाज और लोक प्रचलित विश्वास से है। "शब्द कोष की दृष्टि से 'लोक' का सामान्य अर्थ साधारण जनता के रूप में किया जाता है जिनके लिए हिन्दी में 'लोग' शब्द प्रचलित हो गया है।" अतः 'लोक' मनुष्य समाज का वह वर्ग है, जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीय और पांडित्य की चेतना और अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। आचार्य हजारी प्र० द्विवेदी के अनुसार "लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम नहीं है बल्कि नगरों एवं ग्रामों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल तथा अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची बिलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उन्हें उत्पन्न करते हैं।" द्विवेदी जी ने विचारों में कारिन्दे व श्रामिक तथा पिछड़ा वर्ग को प्राथमिकता दी है जो अपने व्यावहारिक रीति - रिवाजों को एक मौखिक परंपरा से जोड़ता है और पोथियों व काव्य शास्त्रीय ढाँचों से अलग करता है। भक्तिकाल के ऐसे संतों के लिखे हुए को साहित्य में जगह मिलना आसान नहीं था क्योंकि उनमें शास्त्र विरोधी विद्रोही भावधारा तथा पारंपरिक साहित्य संस्कार से हीन जनों की नई और मौलिक उक्तियाँ थीं। इन्हें समझने के लिए शास्त्र से अधिक 'लोकपीड़ा' का ज्ञान आवश्यक था। यह लोकपीड़ा 'आँखिन देखी' स्थितियों की मौलिकता पर आधारित है जो नई दृष्टि के साथ नया समानांतर काव्य शास्त्र रच सके। "यह लोकधारा है जो संस्कृत के 'कूपजल' की न होकर 'भाखा' के बहते नीर की है।" अतः संतों का लोक तत्व उनके द्वारा 'आँखिन देखी' असमानता को खत्म करते हुए समानता की मांग है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस अध्ययन में निर्गुण संत परंपरा में "संत रैदास के लोकतत्व और समाज" पर प्रकाश डालने का प्रयास है। निम्न जाति में जन्म लेकर चमड़े का काम करने वाले एक संत का लोकतत्व और समाज पर विहंगावलोकन करने का उद्देश्य है।

Correspondence

अजय कुमार सिंह
एम.ए. (हिन्दी), एम.ए. (जर्नलिज्म),
एम.एड., एम-फिल, नेट
खसरा नं0 818, बुराड़ी,
दिल्ली-110084

शोध पद्धति

रैदास पर आधारित विभिन्न पुस्तकों, लेखों, पत्र – पत्रिकाओं तथा पुस्तकालयों से संपर्क के अलावे अनेक मठों व संबंधित व्यक्तियों से मिलकर जानकारी इकट्ठा करना व सहयोग प्राप्त करना।

मुख्य विषय: रैदास के संदर्भ में 'लोकतत्व' की पहचान के लिए तत्कालीन समाज के भीतर देखने का प्रयत्न अधिक उचित होगा। रैदास कहते हैं कि—

“रे चित चेत अचेत, काहेन बालमीकहि देख।”

रैदास के समय तक बाल्मिकी ऐतिहासिक तथ्यों के माध्यम से एवं किंवदन्तियों के द्वारा समाज के भीतर अपनी जगह अर्जित की। अतः बाल्मिकी की निम्न जाति और उनकी प्रतिष्ठा के कारणों की तलाश आवश्यक है।

रैदास ने कहा

**“नीचहु ऊच करै मेरा गोविन्द काहु ते न उरै।
नामदेव कबीरा तिलोचन साधना सेनु तरै।”**

नीच और गोविन्द का संबंध और इस संबंध के बनते ही डर का गायब होना। यानी मध्यकालीनता का अतिक्रमण मध्यकालीनता को प्रश्रय देने वाले तत्वों को केन्द्र में रखकर ही होगा। रैदास का नीचवृत्त उनके पिछड़ेपन का सूचक है लेकिन इन पिछड़े हुए समाज की लोकचेतना में नामदेव है, कबीर है, सेन है और इस तरह एक लम्बी संत परंपरा है। इन लोगों ने झाड़फूंक, अंधविश्वास, टोना-टोटका जैसे जड़-तंत्र को खारिज करते हुए विश्वासपरक तन्त्र का निर्माण किया जिसमें कबीरा का सूत, रैदास का चमड़ा, लोहार का हल, डोम की छितनी, किसान का श्रम इत्यादि ने मिलकर एक नये स्वतंत्र समाज का निर्माण किया। जहाँ इन जैसे लोगों को सुनने एवं अपने दुःख बाँटने का अवसर लोगों को मिला। तभी तो

“रामनाथ धन पाइयो, ताते सहज करु व्यवहार रे”।

अर्थात् रैदास की लोकचेतना को समझने के लिए 'सहजता' के साथ 'अनुभव' और 'मरम' का ज्ञान आवश्यक है। रैदास की लोकचेतना परिवर्तन की मांग करती है—

**“भेष लियो पै भेद न जान्यो। अमृत लेह विषै सो मान्यो।
काम क्रोध में जनम गँवायो। साधु संगति मिलि राम न गायो।
तिलक दियो पै तपनि न जाई। माला पहिरे धनेरी लाई।
कह रैदास मरम जो पाऊ ; देव निरंजन सत कर ध्याऊँ”।**

झूठ का आधार तमाम अंध-विश्वासों को जन्म देती है जिससे इस जीवन की 'तपन' खत्म नहीं होती। रैदास सत्य की पहचान करने की बात करते हैं। उन्होंने राम के 'मरम' की पहचान कर ली है। उन्हें ज्ञात हो गया है कि

“प्रभु अगर तुम चन्दन हो तो मैं पानी हूँ।”

अर्थात् तुम्हारे अस्तित्व और मेरे अस्तित्व का निकटता से संबंध है। संतों की प्रगतिशील लोक-चेतना चीजों को नये रूपों में देखने की माँग करती है। रैदास कहते हैं—

“भाई रे भरम भगति सुजान। जो लौ साँच सो नहि पहचान।”

भ्रम ने लोकचेतना पर पर्दा डाल दिया है। उसकी पहचान तभी संभव है जब हम उन जड़ताओं को खारिज करें।

रैदास बाहरी 'ढोंगपन' से लेकर 'इन्द्री निग्रह' व 'शून्यवाद' तक को झूठा साबित करते हुए अपने 'ढोंव' की बात करते हैं

“ज्ञानहिं कारम करम कराई, उपजै ज्ञान त करम नसाई”।

अर्थात्, ज्ञान का केन्द्र में आने से 'करम' का नष्ट होना उसे 'घृत कारन दधि मथै सयान।' की समझ को जन्म देता है। अतः

“हरिजन बैठे हरिजस गावन”

ये हरिजन लोग हैं जो खेत-खलिहानों व अन्य जगहों से श्रम करके आते हैं और समय मिलते ही इकट्ठा होकर 'हरिजस' को बड़े मनोयोग से गाते हैं।

**गनिका थी किस करमा जोग। पर पुरुष सो रमती भोग।
निसि वासर दुष्करम कमाई। राम कहत बैकुंठे जाई।
नामदेव कहिये जाति के ओछ। जाको जस गावै लोक।
भगति हेत भगता के चेले। अंकमाल ले बीठल मिलै।
कोटि जग्य जो कोई करे। राम नाम सम तउ न निस्तरै।
निरगुन का गुन देखौ भाई। देहि सहित कबीर सिधाई।
मारे कुटिल जाति कुटिल में वास। भगत चरन हरिचरन
निवास। चारिउ वेद किया खंडौति। जन रैदास करै डंडौति।**

यह रैदास के समय का पूरा सामाजिक ताना-बाना का इतिहास है। स्त्री-पुरुष संबंधों के दुश्चरित्र-वर्णन के साथ पुरुषवादी मानसिकता को रेखांकित करता है। साथ ही निम्न जातियों से नामों का उल्लेख कर उन्हें स्वयं भी आदमी बोध की शाक्ति देता है। मानव और मृत्यु के संबंधों को रैदास कुछ इस प्रकार उल्लेख करते हैं—

**“ऊचे मंदर साल रसोई। एक धरि फूनि रहनू न होई।
इहु तनु ऐसा जैसे घास की टाटी। जलिंगइयो घास रलि
गयो माटी।
भाई बंध कुटुम्ब सहैरा। आह भी लागे कादू सबैरा।
घर की नारी उरहि तन लागी। उह तउ मृतु मृतु करि भागी।
कहि रविदास मैं जगु लुटिया। हम तउ एक राम कहि
छुटिआ।”**

यह समाज के उस आम धारणा को रेखांकित करता है जहाँ व्यक्ति दुःख-सुख में मौत को विविध उदाहरण देकर इस शरीर की क्षणभंगुरता को रेखांकित करता है। मौत से पहले व्यक्ति विविध कर्मों से साधनों का अर्जन करता है, लेकिन संत अपने गीतों में उन साधनों की निरर्थकता बताते हुए मनुष्यता की बात करते हैं। भाई-बन्धु तो दूर की बात है, साथ में सोनेवाली स्त्री भी मौत के बाद भूत की संभावना व्यक्त करती है। अर्थात् जो अपने पति के वियोग में आँसू बहाये हैं और जिसकी बात अपनी सहेलियों से बताती है—

**“सखी सहेली गरब गहेली। पिउ की बात न सुनहु सहेली।
क्योंकि 'सुख की सार सुहागिनी जाने'।**

रैदास मध्यकालीन गरीब परिवार के सत्य को इस प्रकार उद्घाटित करते हैं—

**“कवन भगति ते रहै प्यारो पाहुना रे। घर-घर देखो मैं गजब
अभावनो रे।**

**मैला-मैला कपड़ा केता एक धोऊ। आवै-आवै नींदहि
कहालौ सोऊ।**

**ज्यों-ज्यों जोड़े त्यों-त्यों फाटे। झूठे सबनि परै उठि गयो
हाटे।**

**कहै रैदास परो जब लख्यो। जोई-जोई विचारे सोई-सोई
देख्यो।”**

अगर मैले पुराने कपड़े को धोये तो फटने का डर। फट गया तो सिलने में डर क्योंकि एक जगह सीले तो दूसरी जगह मसक जाय, फट जाय। जबकि नींद में सपना देखना कि नया कपड़ा आ गया है। कोई घर पर आ जाय तो कहीं तक और कब तक झूठ बोलूँ की बाजार से नया कपड़ा लेने गये हैं। यह हकीकत रैदास की है और रैदास से भी नीचे जीवन बसर करने वाले लोगों की है। यह भी लोकतत्व है जिसका संबंध समाज से ही है। उसको गरीबी क्या उसकी बपौती पिछड़ेपन का कारण है या इसका कोई ठोस भौतिक कारण है। जहाँ भीतर-भीतर सब रस चूस लेते हैं बाहर से ढोंग का रीति-रिवाज पकड़ा देते हैं।—

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊ। फल अरू फूल अनूप न पाऊँ।
थनहर दूध जो बछरू जुठारी। पुहुप भंवर जल मीन बिगार।
मलयागिरि बेधियों भुअंगा। विष अम्रित दोउ एकै संग।
मन ही पूजा मन ही धूप। मनही से सेऊ सहज सरूप।
कह रैदास कवन गति मेरी।

पूजा-पाठ के संदर्भ में यह गीत आज भी पूर्वांचल में थोड़ा-बहुत भाषिक परिवर्तन के साथ गाया जाता है। सवाल यहाँ यह नहीं है कि फूल, फल, दूध, भौरा, मलयागिरि व साँप से संबंधित कितनी दंत कथाएँ हैं बल्कि सवाल यह है कि रैदास 'राम' को केन्द्र में रखकर किस पवित्रता-अपवित्रता, शुद्धता - अशुद्धता का खण्डन कर रहे हैं ? जो व्यक्ति पूजा-अर्चना नहीं जानता है और मन को ही पूजा-अर्चना मान चुका है उसके लिए परंपरा से निर्धारित रीति-रिवाजों के न मानने का दण्ड तो भुगतना ही पड़ेगा। ऐसे में यह अधिक उचित था कि क्यों न उन पाखंडों में प्रयोग होने वाली भौतिक वस्तुओं की शुद्धता पर ही प्रश्न चिन्ह लगाया जाय। रैदास मिथकों व चरित्रों का उल्लेख करते हैं जिसका प्रभाव आज भी भारतीय समाज में देखा जा सकता है—

“अहो देव गुरु गौतम, बामदेव, विस्वामित्र, व्यास।
जमदग्नि, सिंगिरिसि, दुर्वासा, मारकंडे, बाल्मिकी भ्रिगी,
अंगिराई।
कपिल, बगदालिन, सुखमति, मनसा, अस्तावक्र
गुर गज्जानन जामि अगस्ति पुलस्ति पारासर सिव विधाता।
जउ मख सुभ रिसि ध्यवनि बसिष्ठ
जिहनि जागि बलिक कितै वै ध्यान राता
अहोदेव ध्रुव, अंबरीस, प्रह्लाद, नारद
विदुर, द्रुवन, अक्रुर, पंडल, सुदामा मीसम उधव
वभीषन चन्द्रहसि बलि, कलि भगति जगति।
जैदेव, नाम (नामदेव) कबीर गरुड़ हनवेत ग्रिसुता।
आत्म साजा जैविजै द्रौपदी स्त्री प्रचेता
रुकमांगद अंगद बसदेव देवकी अवर अनगिनत कहुँ भगत
केता

इन मिथकों एवं चरित्रों की विशेष वेश-भूषा में भारतीय समाज पहचान कर चुका है। द्रौपदी का चिरहरण और विदुर पीड़ा लोगों को चोट पहुँचाती है। तब वे सीता-द्रौपदी को आज भी कम कपड़ों में देखना पसंद नहीं करते जबकि फिल्मी हिरोइनों व मॉडल गर्ल के संदर्भ में 'थोड़ा और दिखा देती तो' वाली मानसिकता बनी रहती है। मसलन, इन नामों के पीछे भारतीय समाज एक पारंपरिक मानसिकता बना रखा है। उनके अन्दर एक ऐसी संस्कृति काम कर रही है जिसमें वे चरित्र व घटनाओं में परिवर्तन करना संभव नहीं समझते। रैदास इन मिथकों के माध्यम से समाज की जड़ मानसिकता से ऊपर उठने की वकालत करते हैं। मसलन, केवल विवाह व्यवस्था, टोना-टोटका, नाच-गान, खान-पान, रहन-सहन, पहनावा-ओढ़ावा आदि को ही लोकतत्व में शामिल करना ठीक नहीं है। यद्यपि रैदास की कविता

में “आई गवनवा की सारी, अजहूँ उमिर मोरी बारी।” वाली भाषा नहीं है फिर भी भाषा में लोकतत्व का संदर्भ आते ही भाषा सरल हो जाती है। रैदास की कविता में लोकतत्व इतिहास के दबाव से निर्मित होता है। अर्थात् संत रैदास में लोकतत्व की पीड़ा है जिसपर स्थान व समय का दबाव है। रैदास उन जड़ लोकतत्वों की अपेक्षा जीवित लोकतत्वों की पहचान करने की वकालत करते हैं।

प्रासंगिकता

आज शहरी तनाव व गाँव के अंध-विश्वासों से संबंधित भय ने बाबाओं, मुल्ला-मौलवियों, तांत्रिकों को संस्थागत तरीके से बाजार और मीडिया के माध्यम से अपनी दुकान चलाने का अवसर प्रदान किया है। शिक्षित लोग भी विविध सम्प्रदायों से जुड़ रहा है। इसका भौतिक कारण है। गाँव का किसान व मजदूर अपनी थकान दूर करने के लिए ईश्वर का स्मरण करता है, जबकि शहरी व्यक्ति शहर के तनाव से मुक्ति के लिए अपनी बढ़ती में किसी तरह की रुकावट को खत्म करने के लिए ही इन संस्थाओं से जुड़ता है। मध्यकालीन संतों ने जिस धर्म और जाति, ईश्वर और मनुष्य, गुरु और शिष्य के संबंधों की लड़ाई लड़ी थी अब यह 'अनुभव' या 'मरम' का विषय नहीं रह गया है। 'आँखिन देखी' विषय होकर भी अंधविश्वासों के नर्क में फँसता जा रहा है। रैदास के यहाँ

'तुम चन्दन हम पानी' की गुंजाइश थी, जिसका आज लोप हो चुका है। ऐसे में संतो का 'मरम' 'अनुभव' और 'आँखिन देखी' का अध्ययन एक बार फिर आवश्यक हो गया है।

निष्कर्ष

रैदास का लोकतत्व जीवित लोकतत्व है जिसकी बानगी है—

“आज दिवस लेऊ बलिहारा, मेरे गृह आये राम का प्यारा।
आंगन बंगला भवन भयो पावन, हरिजन बैठे हरिजस गावन।”
रैदास के लिए आज वह दिन आ गया है जब 'हरिजस' को 'हरिजन' भी गा सकता है, अपनी थकान व तनाव को दूर कर सकता है। रैदास का राम उसके घर पाहुन बनकर आए हैं,
जिससे उनका आंगन पवित्र हो गया है।
“डगमग छाड़ि दे मन बौरा, अब तो परै बन बनि आवै, लीन्हों
हाथ सिन्धौरा।”

एक विवशता के भीतर नारी को इस तरह तैयार कर देना कि पुरुष ही तुम्हारे लिए सबकुछ है। वह नारी जो कबीर के सूत कातती है, रैदास के साथ जूते गाँठती है, आखिर कौन सी विवशता है कि अचानक तमाम मायामोह को त्यागकर सती बनने जा रही है। उस नारी के साथ 'सिनोरा' इस बात का प्रमाण है कि यह 'वेद-कतेव' की देन है किसी लौकिक परंपरा का नहीं। अतः लोकतत्व को केवल पिछड़ेपन से जोड़ते हुए उसे केवल मौखिक परंपरा का हिस्सा मानना ठीक नहीं है। लोकतत्व समाज में एक जीवित लोक चेतना है जो अपनी प्रगतिशीलता में जनता को लड़ने की ताकत देता है। संतों की भाषा जीवित भाषा है जो मनुष्य की सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करती है। रैदास के लोकतत्व को अंदर से देखने की आवश्यकता है। रैदास जड़ लोकतत्वों की अपेक्षा जीवित लोकतत्वों की पहचान करने की वकालत करते हैं। संत रैदास में लोकतत्व की पीड़ा है जिसपर स्थान और समय का दबाव है। रैदास का स्थान काशी है और समय कबीर का है जहाँ स्थितियों का दो फाड़ हो जाना स्वाभाविक है।

ग्रंथ सूची

1. रैदास बानी: डॉ० शुकदवे सिंह, राधाकृष्ण प्रा०लि०।
जगतपुरी, दिल्ली प्र० सं० 2003
पृ०—23,28,29,4,5,153,17,345,
2. कबीर ग्रंथावली: सं० माता प्र० गुप्त, साहित्य भवन प्रा० लि०
इलाहाबाद. 1985.पेज—212
3. भक्ति कवियों में लोकमानस: डा. श्रीमती नयनतारा तिवारी,
साहित्यवाणी प्रकाशन, इलाहाबाद 1991, पृ०— 18,67
4. हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व: रवीन्द्र भ्रमर, भारती
साहित्य मंदिर, फव्वारा, दिल्ली 1965 पृ०—13,15
5. साहित्य से संवाद: गोपेश्वर सिंह , मेघाबुक्स ; दिल्ली 2005
पृ०— 68,103
6. हिन्दी शब्द कोष: सं० नागेन्द्र नाथ वसु vol. 23
7. हिन्दी भक्ति साहित्य में लोकतत्व : सं० परशुराम चतुर्वेदी,
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2005 पृ०— 37,90,106,
8. संत कवि रैदास: मूल्यांकन और प्रदेय, डॉ० एन० सिंह,
पुखराज प्रकाशन, खतौली (उ०प्र०) प्र०ल० 1983 पृ०—
75,97,102
9. रैदास समग्र: डॉ० युगेश्वर, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना
प्रा०लि० वाराणसी, प्र०सं० 2003 पृ०— 203,178,98,
10. संत साहित्य और समाज : डॉ० रमेशचन्द्र मिश्र, आर्य प्रकाशन
मंडल पृ०— 13,19,
11. गुरु ग्रंथ साहिब : पेज नं०—1124,1106,704,29,30,31,
12. **पत्रिका**
जनपद (त्रैमासिक पत्रिका) अंक—01 पृ० 16,17,18,
मड़ई पत्रिका — 2000 पृ० 20,21,